Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

मुगल साम्राज्य का उदय और राजनीतिक संरचना का एक ऐतिहासिक अध्ययन।

राहुल

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
पंजी. नं. 23-BMU-7236

डॉ० राज सिंह नांदल

शोध–निर्देशिक, प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शोध सारः

1526 ई. में बाबर द्वारा पानीपत के प्रथम युद्ध में दिल्ली सल्तनत को पराजित कर उत्तर भारत में मुगल सत्ता की स्थापना के साथ ही भारतीय उपमहाद्वीप में एक नए साम्राज्यवादी राजनीतिक अध्याय का आरंभ हुआ। मुगल साम्राज्य का उदय केवल सत्ता परिवर्तन नहीं था, बल्कि यह उस व्यापक ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा था जिसमें उत्तर भारत की राजनीतिक विखंडन स्थिति को एक केंद्रीकृत सत्ता के अंतर्गत संगठित किया गया।[1] प्रारंभिक चरण में बाबर और हुमायूँ का शासन अनेक चुनौतियों से घिरा रहा, किंतु शेरशाह सूरी के अंतराल ने प्रशासनिक राजस्व सुधारों की उपयोगिता को स्पष्ट किया। इसके बाद मुगल सत्ता की पुनर्स्थापना और अकबर के शासनकाल में साम्राज्य निर्माण की प्रक्रिया ने स्थायित्व प्राप्त किया। अकबर ने विजय के साथ–साथ प्रशासनिक संस्थाओं को मजबूत कर साम्राज्य को दीर्घकालिक आधार प्रदान किया, जिससे राज्य की शक्ति केवल सेना पर नहीं, बल्कि राजस्व और प्रशासनिक दक्षता पर भी टिकने लगी। जहाँगीर और शाहजहाँ के समय मुगल शासन की परिपक्वता और शाही वैभव अपने उत्कर्ष पर पहुँचे। दरबारी संस्कृति, स्थापत्य, शहरीकरण और व्यापारिक गतिविधियों का प्रसार इस युग को समृद्धि का प्रतीक बनाता है। किंतु यह समृद्धि राज्य की बढ़ती वित्तीय आवश्यकताओं से भी जुड़ी थी। प्रशासनिक विस्तार, सेना का रख–रखाव और शाही खर्चों ने राजस्व संग्रह की कठोरता को बढ़ाया, जिसका प्रभाव ग्रामीण समाज, जमींदार वर्ग और स्थानीय संरचनाओं पर पड़ा। औरंगजेब के शासनकाल में साम्राज्य का भू–विस्तार अत्यधिक बढ़ा, विशेषतः दक्कन अभियानों के कारण, परंतु लंबे युद्धों, बढ़े हुए सैन्य खर्च और लगातार प्रशासनिक दबाव ने साम्राज्य के भीतर असंतोष की प्रवृत्तियों को तीव्र किया। इस प्रकार मुगल साम्राज्य का विस्तार एक ओर शक्ति का प्रतीक था, तो दूसरी

[1] बाबर (1997). बाबरनामा (अनुवादः ए.एस. बेवरिज). नई दिल्लीः लो प्राइस पब्लिकेशन, पृ. 322–323.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

ओर वह ऐसी परिस्थितियाँ भी निर्मित कर रहा था जिनमें प्रतिरोध और विद्रोह की संभावनाएँ बढ़ती गईं।

मुख्य शब्दः मुगल साम्राज्य, राजनीतिक संरचना, केंद्रीयकृत सत्ता, मुगल प्रशासन, राजस्व व्यवस्था, मनसबदारी व्यवस्था, जागीरदारी व्यवस्था, स्थानीय शक्तियाँ, गैर–मुस्लिम राजनीतिक विद्रोह, क्षेत्रीय शक्तियों का उदय, स्वायत्तता की प्रवृत्ति, धार्मिक नीति, जजिया कर, सामाजिक संरचना।

मुगल राजनीतिक संरचना का मूल आधार बादशाह केंद्रीकृत राजसत्ता थी। सम्राट सर्वोच्च निर्णयकर्ता था और शासन व्यवस्था का केंद्र शाही दरबार था, जहाँ प्रशासनिक, सैन्य और न्यायिक निर्णयों का निर्धारण होता था। इस केंद्रीकरण का उद्देश्य विशाल भू–भाग पर नियंत्रण स्थापित करना, राजस्व सुनिश्चित करना और सैन्य शक्ति को संगठित रखना था। किंतु एक बड़े साम्राज्य में केंद्रीकरण की प्रक्रिया अनिवार्य रूप से स्थानीय शक्तियों की भूमिका और अधिकारों को प्रभावित करती है। कई क्षेत्रों में स्थानीय राजवंशों, जमींदारों और समुदायों ने यह अनुभव किया कि उनकी परंपरागत स्वायत्तता और स्थानीय अधिकार सीमित हो रहे हैं। यही अनुभूति धीरे–धीरे असंतोष में बदलती है और कई बार राजनीतिक विद्रोह का आधार बनती है। इसलिए मुगलकालीन प्रतिरोध को केवल सत्ता के विरुद्ध विद्रोह नहीं, बल्कि स्थानीय अधिकारों, संसाधनों और स्वायत्तता की रक्षा के संघर्ष के रूप में भी देखा जाना चाहिए।[2]

मुगल साम्राज्य की राजनीतिक व्यवस्था वस्तुतः एक संतुलन आधारित ढाँचा थी, जिसे "सम्राट, कुलीन वर्ग और स्थानीय शक्तियाँ" के परस्पर संबंधों के माध्यम से समझा जा सकता है। दरबार में मनसबदारों जैसे कुलीन अधिकारी प्रशासनिक और सैन्य शक्ति का आधार थे, जबकि प्रांतों में सूबेदार, दीवान और फौजदार जैसे पदाधिकारी राज्य की नीतियों को लागू करते थे। परंतु इतने व्यापक क्षेत्र पर शासन करने के लिए मुगलों को स्थानीय शक्तियों राजपूत सरदारों, जमींदारों, व्यापारी समूहों और विभिन्न क्षेत्रीय नेतृत्व के साथ सहयोग और समझौते का रास्ता भी अपनाना पड़ता था। यह नीति साम्राज्य को स्थायित्व प्रदान करती थी, क्योंकि स्थानीय शक्तियाँ शासन में भागीदारी और सम्मान के बदले राजनीतिक निष्ठा बनाए रखती थीं। किंतु जब यह संतुलन टूटता जैसे कर दबाव बढ़ने, प्रशासनिक कठोरता, धार्मिक हस्तक्षेप या राजनीतिक उपेक्षा के कारण, तो वही स्थानीय शक्तियाँ प्रतिरोध की ओर अग्रसर हो जातीं।[3]

---

[2] आर.सी. मजूमदार (1974). द मुगल एम्पायर. मुंबईः भारतीय विद्या भवन, पृ. 180–181.

[3] एम. अतहर अली (1997). मुगल अभिजात वर्ग का गठन. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 45–46.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

राज्य और स्थानीय शक्तियों के संबंधों की प्रकृति इसलिए अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि विद्रोह अक्सर इसी संबंध संतुलन के टूटने की ऐतिहासिक परिणति होते हैं। मुगल सत्ता के साथ साझेदारी करने वाले कई राजपूत सरदार और स्थानीय कुलीन वर्ग साम्राज्य के स्थायी स्तंभ बने, किंतु अनेक अन्य क्षेत्रों में ग्रामीण नेतृत्व, जनजातीय समूह और नव उभरते समुदाय जैसे जाट, सिख और मराठा केंद्रीकरण और नियंत्रण की नीतियों को अपने हितों के विरुद्ध समझने लगे। इन समुदायों का उभार केवल धार्मिक पहचान पर आधारित नहीं था, यह स्थानीय संसाधनों पर नियंत्रण, राजनीतिक सम्मान तथा आर्थिक, प्रशासनिक दबाव के विरुद्ध प्रतिक्रिया का परिणाम भी था। इसलिए मुगलकालीन गैर–मुस्लिम राजनीतिक विद्रोहों की ऐतिहासिक जड़ें समझने के लिए मुगल साम्राज्य की राजनीतिक संरचना को एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में देखना आवश्यक है जहाँ सत्ता, सहयोग और प्रतिरोध निरंतर बदलते संबंधों के माध्यम से इतिहास का निर्माण करते हैं।[4] यदि इस को समग्र रूप में देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि मुगल साम्राज्य का उदय और उसकी राजनीतिक संरचना एक ओर साम्राज्य की शक्ति और प्रशासनिक क्षमता का प्रतीक थी, वहीं दूसरी ओर यही संरचना कई क्षेत्रों में तनाव, असंतोष और प्रतिरोध की परिस्थितियाँ उत्पन्न करने वाली भी थी।

मुगल प्रशासनिक एवं राजस्व व्यवस्था

मुगल साम्राज्य की स्थिरता और विस्तार के पीछे केवल सैन्य शक्ति ही निर्णायक नहीं थी, बल्कि एक सुव्यवस्थित प्रशासनिक ढाँचा और अत्यधिक विकसित राजस्व व्यवस्था भी इसकी वास्तविक रीढ़ थी। मुगल शासन की प्रकृति मूलतः "राजस्व संचालित राज्य" जैसी थी, जहाँ शासन की क्षमता का आकलन इस बात से होता था कि वह कितनी प्रभावी ढंग से राजस्व एकत्र कर सकता है और उस राजस्व के आधार पर सेना, प्रशासन और शांति व्यवस्था को बनाए रख सकता है। इस व्यवस्था की विशेषता यह थी कि केंद्र में सत्ता अत्यंत संगठित रूप में मौजूद थी, पर उसका प्रभाव प्रांतीय और स्थानीय स्तर तक फैलाने के लिए एक विस्तृत नौकरशाही तंत्र तैयार किया गया था। यह तंत्र जितना अधिक प्रभावी हुआ, उतना ही अधिक राज्य का नियंत्रण बढ़ा, पर इसी नियंत्रण की बढ़ती तीव्रता कई बार स्थानीय समाज पर दबाव बनकर उभरी और असंतोष की परिस्थितियाँ पैदा करने लगी। केंद्रीय स्तर पर बादशाह सर्वोच्च सत्ता का केंद्र था, जिसके अधीन वित्त, सैन्य, न्याय और राजस्व जैसे प्रमुख विभाग कार्य करते थे। दरबार और केंद्रीय प्रशासन का मुख्य लक्ष्य साम्राज्य की सुरक्षा, राजस्व की निरंतरता और राज्य की राजनीतिक निष्ठा को बनाए रखना था। मुगल शासन की नीति निर्माण प्रक्रिया, पद नियुक्तियाँ, सैन्य अभियानों की योजना और राजस्व संबंधी

[4] जे.एफ. रिचर्ड्स (1995). द मुगल एम्पायर. नई दिल्लीः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 120–121.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

निर्णय मुख्यतः इसी केंद्रीय तंत्र के माध्यम से संचालित होते थे। किंतु जैसे–जैसे साम्राज्य का विस्तार हुआ, केंद्रीय प्रशासन की आवश्यकताएँ बढ़ती गईं विशेषकर सैन्य खर्चों, दरबारी संरचना और प्रांतों के नियंत्रण हेतु। इन आवश्यकताओं की पूर्ति का सीधा बोझ राजस्व संग्रह पर बढ़ा, जिससे प्रशासन की कठोरता, निगरानी और दमनात्मक प्रवृत्तियाँ कई स्थानों पर अधिक स्पष्ट होने लगीं। यही वह बिंदु है जहाँ प्रशासनिक दक्षता और जन–जीवन पर दबाव दोनों साथ–साथ बढ़ते दिखाई देते हैं।[5]

मुगल साम्राज्य की विशालता के कारण प्रांतीय प्रशासन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। सूबों के माध्यम से प्रांतों का शासन संचालित होता था, जिसमें सूबेदार, दीवान, फौजदार और काजी जैसे अधिकारी राज्य की नीतियों को स्थानीय स्तर पर लागू करते थे। प्रांतों में प्रशासन का उद्देश्य एक ओर राजस्व वसूली और शांति व्यवस्था को सुनिश्चित करना था, दूसरी ओर स्थानीय शक्तियों को नियंत्रण में रखना था। किंतु प्रांतीय प्रशासन में दूरी, संचार की सीमाएँ, स्थानीय परिस्थितियाँ, तथा अधिकारियों की निजी हित साधना जैसी समस्याएँ भी अक्सर देखने को मिलती थीं। कई बार प्रांतीय अधिकारी अत्यधिक कठोर वसूली करते, स्थानीय जमींदारों पर दबाव बढ़ाते या राजनीतिक विरोध को बलपूर्वक दबाते। इसके परिणामस्वरूप प्रांतों में राज्य की छवि "संरक्षक" के बजाय "दबावकारी सत्ता" के रूप में भी उभर सकती थी और यही स्थिति असंतोष को जन्म देती थी।[6]

मुगल अर्थव्यवस्था की असली धुरी भूमि राजस्व प्रणाली थी। राज्य की आय का सबसे बड़ा स्रोत कृषि उत्पादन था, इसलिए भूमि मापन, फसल का अनुमान, कर निर्धारण और वसूली की प्रक्रियाएँ शासन की प्राथमिक चिंता बनी रहीं। अकबर के समय भूमि राजस्व व्यवस्था को अधिक व्यवस्थित रूप दिया गया, जिससे राज्य को स्थिर आय प्राप्त हुई। परंतु यह व्यवस्था जितनी अधिक संगठित होती गई, उतना ही अधिक ग्रामीण समाज राज्य के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आता गया। सामान्य परिस्थितियों में कर व्यवस्था राज्य और किसान के बीच एक नियमित संबंध बनाती थी, किंतु संकट के समय जैसे फसल–विफलता, अकाल, महामारी या युद्ध यदि राजस्व में राहत नहीं मिलती, तो ग्रामीण समाज में असंतोष तीव्र हो जाता। ऐसी स्थितियों में किसान, कारीगर और ग्रामीण श्रमिक वर्ग केवल आर्थिक संकट नहीं झेलते, बल्कि वे प्रशासनिक दमन और कठोर वसूली का भी सामना करते हैं। यह असंतोष धीरे–धीरे सामूहिक प्रतिरोध का रूप ले सकता है, जो आगे चलकर विद्रोहों के लिए सामाजिक आधार तैयार करता है।

---

[5] जे.एफ. रिचर्ड्स (1995). द मुगल एम्पायर. नई दिल्लीः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 120–121.

[6] सतीश चन्द्र (2007). मुगल साम्राज्य. नई दिल्लीः हरआनंद पब्लिकेशन, पृ. 95–96.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

मुगल प्रशासन में मनसबदारी और जागीरदारी व्यवस्था ने राज्य की राजनीति और अर्थव्यवस्था को एक–दूसरे से जोड़ दिया। मनसबदारी प्रणाली के माध्यम से राज्य ने कुलीन वर्ग और सैन्य अधिकारियों को अपनी सेवा में बाँधे रखा। बदले में उन्हें जागीरें दी जाती थीं, जिनसे वे राजस्व प्राप्त करते और सैनिक व्यवस्था बनाए रखते। यह व्यवस्था राज्य को सैन्य शक्ति देने में सफल रही, पर इसके भीतर कई अंतर्विरोध भी थे। जागीरों का बार–बार स्थानांतरण, अधिकारियों की अल्पकालिक नियुक्तियाँ और अधिक राजस्व निकालने की प्रवृत्ति ने ग्रामीण समाज को अस्थिर किया। जागीरदार प्रायः यह प्रयास करते थे कि सीमित समय में अधिक से अधिक राजस्व वसूल कर लें, जिससे किसानों और स्थानीय समाज पर दबाव बढ़ता। उत्तरवर्ती मुगल काल में जब जागीरों की उपलब्धता घटने लगी और राजस्व क्षमता पर संकट आया, तब "जागीर संकट" जैसी स्थिति उभरती है। यह संकट केवल आर्थिक नहीं था, यह प्रशासनिक विघटन, कुलीन वर्ग की असंतुष्टि और प्रांतीय स्तर पर नियंत्रण की कमजोरी का संकेत भी था जो विद्रोहों और क्षेत्रीय उभार के लिए अनुकूल वातावरण बनाता है।[7]

राज्य और ग्रामीण समाज के संबंध इस पूरे प्रशासनिक ढाँचे की सबसे संवेदनशील कड़ी थे। गाँव स्तर पर जमींदार, चौधरी, मुकद्दम, पटवारी आदि राज्य और किसानों के बीच मध्यस्थ की भूमिका निभाते थे। राज्य के लिए ये वर्ग राजस्व संग्रह को संभव बनाते थे, जबकि ग्रामीण समाज के लिए ये सुरक्षा, प्रतिनिधित्व और स्थानीय संतुलन बनाए रखते थे। किंतु जब राज्य ने इन मध्यस्थों के पारंपरिक अधिकार सीमित किए, या जब वसूली का दबाव बढ़ा, तब यही समूह विद्रोहों में अग्रणी भूमिका निभाने लगे। कई विद्रोहों की प्रकृति इसी कारण "ग्रामीण आधारित" दिखाई देती है, क्योंकि वहाँ प्रतिरोध का नेतृत्व स्थानीय शक्तियों के हाथों में जाता है जो राज्य के साथ पहले किसी न किसी रूप में जुड़े रहते थे। इसलिए मुगलकालीन विद्रोहों को समझने के लिए यह देखना अनिवार्य है कि राजस्व प्रशासन ने ग्रामीण समाज में शक्ति संतुलन को कैसे बदला और किस प्रकार यह बदलाव असंतोष से प्रतिरोध तथा प्रतिरोध से विद्रोह की ओर रूपांतरित हुआ।[8] मुगल प्रशासनिक एवं राजस्व व्यवस्था ने साम्राज्य को सुदृढ़ आधार प्रदान किया, परंतु इसी व्यवस्था की कठोरता, बढ़ती वित्तीय माँगें, जागीर मनसब प्रणाली की सीमाएँ और ग्रामीण समाज पर बढ़ता दबाव अनेक बार असंतोष की परिस्थितियाँ निर्मित करते रहे।

[7] एम. अतहर अली (1997). मुगल अभिजात वर्ग का गठन. नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 47–48.

[8] आर.सी. मजूमदार (1974). द मुगल एम्पायर. मुंबईः भारतीय विद्या भवन, पृ. 179–180.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

धार्मिक नीति और सामाजिक संरचना

मुगलकालीन भारत में धर्म केवल आस्था या निजी आचरण का विषय नहीं था, बल्कि वह राजनीति, प्रशासन और सामाजिक संगठन के साथ गहरे रूप में जुड़ा हुआ था। इसलिए मुगल शासकों की धार्मिक नीति और उस नीति से प्रभावित सामाजिक संरचना को समझना गैर–मुस्लिम राजनीतिक विद्रोहों के अध्ययन के लिए एक आवश्यक पृष्ठभूमि तैयार करता है। मुगल शासन की धार्मिक नीतियाँ किसी एक समान दिशा में स्थिर नहीं रहीं, वे समय, शासक के व्यक्तित्व, साम्राज्य की राजनीतिक आवश्यकता तथा प्रांतीय परिस्थितियों के अनुरूप बदलती रहीं। इस परिवर्तनशीलता ने समाज के विभिन्न वर्गों और समुदायों में कभी स्वीकार्यता, कभी आशंका और कभी असंतोष की भावना को जन्म दिया। हालांकि यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि विद्रोहों की व्याख्या केवल धार्मिक प्रतिक्रिया के रूप में करना ऐतिहासिक दृष्टि से अपूर्ण होगा, क्योंकि अधिकांश आंदोलनों के पीछे आर्थिक दबाव, राजनीतिक उपेक्षा, स्थानीय अधिकारों का क्षरण और प्रशासनिक दमन जैसे तत्व भी निर्णायक रूप से कार्य करते रहे। फिर भी धर्म और धार्मिक नीति कई बार उस असंतोष को "पहचान" और "वैचारिक ऊर्जा" प्रदान कर देती थी, जिससे प्रतिरोध अधिक संगठित और व्यापक बन जाता था।[9]

अकबर के शासनकाल में धार्मिक नीति अपेक्षाकृत समन्वयवादी मानी जाती है, जिसमें राजनीतिक स्थिरता के लिए विविध समुदायों को साथ लेकर चलने और सत्ता के प्रति उनकी निष्ठा सुनिश्चित करने पर बल दिया गया। अकबर की नीति का एक व्यावहारिक लक्ष्य यह था कि बहुसंख्यक गैर–मुस्लिम समाज विशेषकर राजपूत, जमींदार वर्ग और व्यापारिक समूह राज्य के साथ सहयोग की स्थिति में रहें। इस समन्वय का अर्थ केवल धार्मिक सहिष्णुता नहीं था, यह एक व्यापक राजनीतिक रणनीति भी थी जिसके माध्यम से साम्राज्य की वैधता, प्रशासनिक स्थिरता और राजस्व आधार को सुदृढ़ किया जा सके। इसके बाद जहाँगीर और शाहजहाँ के समय नीति का स्वरूप अधिक "राजकीय परंपरा और दरबारी प्रतिष्ठा" के अनुरूप दिखाई देता है, कई स्थानों पर सहिष्णुता के साथ–साथ नियंत्रण भी मौजूद रहता है। औरंगजेब के शासनकाल में नीतिगत कठोरता और धार्मिक रुझान के कुछ निर्णय जैसे जजिया की पुनर्स्थापना, कुछ स्थानों पर धार्मिक हस्तक्षेप, तथा राजनीतिक नियंत्रण की तीव्रता समाज के कुछ वर्गों में असंतोष बढ़ाने वाले कारक बने। परंतु यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इन नीतियों का प्रभाव पूरे साम्राज्य में एक समान नहीं था, अनेक क्षेत्रों में

[9] एस.ए.ए. रिजवी (1975). मुगलकालीन भारत में धार्मिक और बौद्धिक इतिहास. दिल्लीः मुंशी राम मनोहर लाल, पृ. 85–86.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

स्थानीय प्रशासन की भूमिका, प्रांतीय शासकों की नीति और सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ यह तय करती थीं कि धार्मिक नीति समाज पर किस रूप में प्रभाव डालेगी।[10]

जजिया जैसे कर और धार्मिक हस्तक्षेप के प्रश्न का प्रभाव केवल आर्थिक नहीं था, बल्कि वह प्रतीकात्मक भी था। जजिया की चर्चा अक्सर "धार्मिक पहचान" और "राज्य के दृष्टिकोण" से जुड़कर समाज के मनोविज्ञान को प्रभावित करती है। जब कोई कर या नीति किसी समुदाय को अलग पहचान के आधार पर चिह्नित करती है, तो वह असंतोष को एक सामूहिक रूप दे सकती है। यही कारण है कि जजिया जैसे मुद्दे कई बार प्रतिरोध के लिए एक प्रतीकात्मक आधार बनते हैं भले ही प्रतिरोध के वास्तविक कारण स्थानीय राजनीति, कर दबाव, या अधिकारों का हनन हों। विशेषतः जब धार्मिक असंतोष आर्थिक दबाव और राजनीतिक उपेक्षा के साथ जुड़ जाता है, तब विद्रोह का स्वरूप केवल शिकायत तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह संगठन और संघर्ष के रूप में विकसित होने लगता है। इस दृष्टि से धार्मिक नीति कई विद्रोहों में "कारण" से अधिक "उत्प्रेरक" की भूमिका निभाती है, जो पहले से मौजूद सामाजिक, आर्थिक तनावों को तेज कर देती है।

मुगलकालीन गैर–मुस्लिम समाज अत्यंत विविध और बहुस्तरीय था। यह समाज जाति, पेशे, क्षेत्रीय पहचान और परंपरागत सत्ता संबंधों पर आधारित था। राजपूत, ब्राह्मण, वैश्य व्यापारी, कृषक समुदाय, कारीगर वर्ग तथा जनजातीय समूह सबकी स्थिति, प्रतिष्ठा और राज्य से संबंध अलग–अलग थे। कुछ वर्गों को शासन में अवसर मिले, अनेक गैर–मुस्लिम कुलीन, राजपूत सरदार और प्रशासनिक अधिकारी मुगल सत्ता की संरचना में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। वहीं दूसरी ओर ग्रामीण और निम्नवर्गीय समूहों विशेषकर कृषक, श्रमिक, तथा सीमांत समुदाय राजस्व दबाव, स्थानीय अधिकारियों की कठोरता और सामाजिक, आर्थिक असुरक्षा से अधिक प्रभावित हुए। यही असमानता समाज के भीतर "अनुभव" की विविधता पैदा करती है: कोई वर्ग राज्य को अवसर और सुरक्षा देने वाली सत्ता मानता है, तो कोई वर्ग उसे दबाव और अन्याय का स्रोत अनुभव करता है। यही सामाजिक विविधता आगे चलकर विद्रोहों के अलग–अलग स्वरूप, नेतृत्व और संगठनात्मक ढाँचे को जन्म देती है।[11]

मुगलकालीन सामाजिक संरचना में शक्ति संतुलन स्थिर नहीं था, वह समय के साथ बदलता रहा। राज्य की नीति, राजस्व प्रणाली और प्रशासनिक हस्तक्षेप ने कई बार सामाजिक वर्गों के पारंपरिक संबंधों को पुनर्गठित किया। उदाहरणतः जब राज्य ने किसी क्षेत्र में जमींदारों के अधिकार सीमित किए या उनकी भूमिका को केवल राजस्व संग्रह तक संकुचित किया,

[10] जदुनाथ सरकार (1996). औरंगजेब का इतिहास. नई दिल्ली: ओरिएंट लॉन्गमैन, पृ. 150–151.

[11] के.एम. अशरफ (1959). लाइफ एंड कंडीशन्स ऑफ द पीपल ऑफ हिन्दुस्तान. दिल्ली: मुंशी राम मनोहर लाल, पृ. 121–122.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

तब जमींदार वर्ग असंतुष्ट हुआ। जब कृषक वर्ग पर कर दबाव बढ़ा और राहत की व्यवस्था कमजोर रही, तब कृषक असंतोष बढ़ा। जब किसी समुदाय की धार्मिक, सांस्कृतिक पहचान राजनीतिक दबाव के साथ जुड़ी, तब उसकी सामूहिक चेतना अधिक संगठित होने लगी। इसी कारण कई विद्रोहों में जाति–समुदाय की भूमिका, क्षेत्रीय पहचान और स्थानीय नेतृत्व निर्णायक बनकर सामने आते हैं। जाटों में कृषक आधारित संगठन और स्थानीय अधिकारों की रक्षा की प्रवृत्ति दिखती है। सिखों में धार्मिक पहचान के साथ सैन्य संगठन विकसित होता है, मराठों में क्षेत्रीय राजनीतिक आकांक्षा और राज्य निर्माण की क्षमता उभरती है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि विद्रोह केवल राज्य के विरुद्ध तात्कालिक प्रतिक्रिया नहीं थे, बल्कि वे सामाजिक संरचना के भीतर बदलते शक्ति संतुलन और पहचान निर्माण की दीर्घकालिक प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति भी थे।[12] अतः मुगलकालीन धार्मिक नीति और सामाजिक संरचना का अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि विद्रोह किस प्रकार केवल एक राजनीतिक घटना नहीं, बल्कि एक व्यापक सामाजिक प्रक्रिया का परिणाम होते हैं। धार्मिक नीति कई बार प्रतिरोध को पहचान और वैचारिक आधार देती है, सामाजिक संरचना विद्रोह के लिए संगठनात्मक और नेतृत्वकारी आधार तैयार करती है और राज्य के हस्तक्षेप से उत्पन्न असंतोष विद्रोह की दिशा तय करता है।[13]

क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और स्वायत्तता की प्रवृत्ति

मुगल साम्राज्य का राजनीतिक इतिहास केवल केंद्रीय सत्ता के विस्तार और प्रशासनिक नियंत्रण की कहानी नहीं है, बल्कि यह उस समानांतर प्रक्रिया का भी इतिहास है जिसमें साम्राज्य के भीतर और उसके सीमांत क्षेत्रों में अनेक क्षेत्रीय शक्तियाँ क्रमशः उभरती गईं। इन शक्तियों का उदय किसी एक कारण से नहीं हुआ, यह राज्य के केंद्रीकरण, प्रांतीय प्रशासन की सीमाओं, राजस्व दबाव, स्थानीय समाज की बदलती संरचना तथा राजनीतिक अवसरों के संयुक्त प्रभाव का परिणाम था। जैसे–जैसे मुगल साम्राज्य का फैलाव बढ़ा, वैसे–वैसे प्रशासनिक नियंत्रण की लागत भी बढ़ती गई और केंद्र के लिए प्रत्येक क्षेत्र पर समान रूप से कठोर और प्रभावी नियंत्रण बनाए रखना कठिन होता गया। इसी कठिनाई के भीतर कई स्थानों पर राजनीतिक रिक्तता या नियंत्रण की ढील उत्पन्न हुई, जिसका लाभ उठाकर क्षेत्रीय नेतृत्व संगठित होने लगा। यह प्रक्रिया कभी मुगल सत्ता के सहयोगी रूप में, तो कभी प्रतिरोधी रूप में विकसित हुई और अनेक मामलों में सहयोग से प्रतिरोध की ओर संक्रमण ही क्षेत्रीय शक्ति के उभार का निर्णायक चरण बना।

---

[12] बर्टन स्टीन (1989). ए हिस्ट्री ऑफ इंडिया. ऑक्सफोर्ड: ब्लैकवेल, पृ. 180–181.

[13] नॉर्मन लो (1997). मास्टरिंग मॉडर्न वर्ल्ड हिस्ट्री. लंदन: मैकमिलन प्रेस, पृ. 210–211.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

क्षेत्रीय शक्तियों के उभार को समझते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि राजपूत, मराठा, जाट, सिख और अन्य स्थानीय समूह केवल "विद्रोही" समुदाय नहीं थे, बल्कि वे अपने–अपने सामाजिक आधार और संसाधन नियंत्रण के माध्यम से स्थायी राजनीतिक इकाइयों के रूप में उभर रहे थे। मराठा शक्ति का दक्कन में उभार केवल युद्ध क्षमता से नहीं, बल्कि स्थानीय राजस्व संसाधनों पर नियंत्रण, किलों की रणनीतिक व्यवस्था और प्रशासनिक संगठन से भी जुड़ा था। पंजाब में सिख शक्ति का उभार धार्मिक पहचान के साथ–साथ सैन्य संगठन, सामूहिक अनुशासन और क्षेत्रीय सुरक्षा की जरूरतों से विकसित हुआ। उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में जाट शक्ति का उदय मुख्यतः ग्रामीण समाज में नेतृत्व, कृषि आधारित संसाधनों पर पकड़ और स्थानीय अधिकारों की रक्षा के संघर्ष से संबंधित था। राजपूतों के संदर्भ में भी यह देखा जा सकता है कि वे कई स्थानों पर मुगल सत्ता के साझेदार बने, पर जहाँ उनके स्वायत्त अधिकारों को चुनौती मिली या प्रतिष्ठा/सत्ता में कटौती का अनुभव हुआ, वहाँ संघर्ष की संभावनाएँ बढ़ीं। इस प्रकार इन शक्तियों के उभार के पीछे धार्मिक, सांस्कृतिक तत्वों के साथ–साथ राजनीतिक अवसर, प्रशासनिक कमजोरी और स्थानीय संसाधनों पर नियंत्रण अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।[14]

क्षेत्रीय शक्तियों की स्वायत्तता की प्रवृत्ति मूलतः उस राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति थी जिसमें स्थानीय समाज और नेतृत्व यह मानने लगे कि शासन का अधिकार केवल केंद्र में नहीं, बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर भी स्थापित होना चाहिए। उनकी मांगें स्थानीय शासन, राजस्व नियंत्रण और राजनीतिक सम्मान से जुड़ी थीं। राजस्व नियंत्रण इसलिए महत्वपूर्ण था क्योंकि राजस्व ही शासन की वास्तविक शक्ति को तय करता है जो शक्ति राजस्व पर नियंत्रण कर लेती है, वह सेना, प्रशासन और राजनीतिक संरचना को भी संगठित कर सकती है। इसी कारण क्षेत्रीय नेतृत्व अक्सर मुगल प्रशासन के विरुद्ध या उसके समानांतर "स्थानीय नियंत्रण" की दिशा में बढ़ता दिखाई देता है। जब मुगल शासन इन प्रवृत्तियों को दबाने का प्रयास करता, तब संघर्ष तेज हो जाता। कई बार यह संघर्ष केवल किसी कर वसूली या प्रशासनिक निर्णय तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह "स्वशासन" और "राजनीतिक अधिकार" की व्यापक मांग में बदल जाता है। इसलिए स्वायत्तता की प्रवृत्ति को विद्रोहों के संगठनात्मक विकास की एक निर्णायक पृष्ठभूमि के रूप में देखना आवश्यक है, क्योंकि यही वह बिंदु है जहाँ असंतोष एक स्पष्ट राजनीतिक लक्ष्य का रूप ग्रहण करता है।

मुगल साम्राज्य और क्षेत्रीय शक्तियों के बीच संघर्ष ने प्रशासन पर बहुआयामी दबाव डाला। युद्धों का दबाव, लगातार सैन्य अभियानों की आवश्यकता और प्रांतीय स्तर पर नियंत्रण बनाए

[14] स्टुअर्ट गॉर्डन (1993). द मराठाज 1600–1818. कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 40–41.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

रखने की चुनौती ने राज्य की वित्तीय जरूरतों को बढ़ाया। इन जरूरतों की पूर्ति के लिए जब राजस्व वसूली की कठोरता बढ़ती है, तो असंतोष और प्रतिरोध की संभावना भी बढ़ती है। इस प्रकार एक चक्र विकसित होता है: संघर्ष बढ़ता है → राज्य को अधिक संसाधन चाहिए → राजस्व दबाव बढ़ता है → स्थानीय समाज में असंतोष बढ़ता है → क्षेत्रीय शक्तियाँ अधिक समर्थन और संगठन प्राप्त करती हैं → संघर्ष और गहरा हो जाता है। यह प्रक्रिया विशेष रूप से उत्तरवर्ती मुगलकाल में अधिक स्पष्ट दिखाई देती है, जब केंद्रीय सत्ता की पकड़ ढीली पड़ने लगती है और प्रांतों में नवाबों तथा क्षेत्रीय नेतृत्व की स्वायत्तता बढ़ती जाती है।[15] इन संघर्षों के परिणाम केवल "मुगल सत्ता का कमजोर होना" नहीं थे, बल्कि वे एक नए राजनीतिक परिदृश्य की रचना भी कर रहे थे। अनेक क्षेत्रीय शक्तियाँ, जो प्रारंभ में विद्रोही या प्रतिरोधी समूह के रूप में उभरीं, आगे चलकर राज्य निर्माण की दिशा में बढ़ीं। इस प्रकार क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और स्वायत्तता की प्रवृत्ति मुगलकालीन भारत में सत्ता व्यवस्था की पुनर्संरचना की प्रक्रिया का हिस्सा थी। गैर–मुस्लिम राजनीतिक विद्रोहों के अध्ययन में यह पक्ष विशेष रूप से महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह दिखाता है कि विद्रोह केवल विघटनकारी घटनाएँ नहीं थे, बल्कि वे नए सत्ता केंद्रों के निर्माण और भारतीय राजनीति के क्षेत्रीयकरण की ऐतिहासिक प्रक्रिया के वाहक भी थे।[16]

निष्कर्ष:

मुगल साम्राज्य का उदय भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना थी, जिसने उत्तर भारत की बिखरी हुई राजनीतिक शक्तियों को एक केंद्रीकृत शासन व्यवस्था के अंतर्गत संगठित किया। बाबर से आरम्भ होकर अकबर के समय यह साम्राज्य स्थायित्व और व्यापकता प्राप्त करता है। अकबर ने प्रशासनिक संस्थाओं, राजस्व व्यवस्था और स्थानीय शक्तियों के सहयोग के माध्यम से साम्राज्य को मजबूत आधार प्रदान किया। जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में मुगल शासन शाही वैभव, स्थापत्य, दरबारी संस्कृति और आर्थिक समृद्धि के लिए प्रसिद्ध हुआ, परन्तु इसी काल में प्रशासनिक विस्तार और शाही खर्चों के कारण राजस्व दबाव भी बढ़ता गया। औरंगजेब के समय साम्राज्य का भू–क्षेत्र बहुत विस्तृत हुआ, लेकिन लंबे युद्धों, विशेषकर दक्कन अभियानों, ने राज्य की वित्तीय और प्रशासनिक शक्ति को कमजोर कर दिया। इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि मुगल राजनीतिक संरचना का मूल आधार

[15] मुजफ्फर आलम (1986). द क्राइसिस ऑफ एम्पायर इन मुगल नॉर्थ इंडिया. दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी ।प्रेस, पृ. 74–75.

[16] सी.ए. बेली (1988). इंडियन सोसाइटी एंड द मेकिंग ऑफ द ब्रिटिश एम्पायर. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 50–51.

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 7.2 ISSN No: 3049-4176

बादशाह–केंद्रित सत्ता थी। सम्राट सर्वोच्च निर्णयकर्ता था और शासन व्यवस्था का संचालन शाही दरबार, प्रांतीय अधिकारियों, मनसबदारों, जागीरदारों और स्थानीय शक्तियों के सहयोग से होता था। यह व्यवस्था प्रारंभ में साम्राज्य को स्थिरता देती रही, लेकिन जैसे–जैसे केंद्र का नियंत्रण कठोर हुआ और स्थानीय स्वायत्तता सीमित होने लगी, वैसे–वैसे स्थानीय वर्गों में असंतोष बढ़ने लगा। राजपूत, जाट, सिख, मराठा और अन्य क्षेत्रीय शक्तियों का उदय केवल धार्मिक प्रतिक्रिया नहीं था, बल्कि यह राजनीतिक अधिकार, स्थानीय संसाधनों पर नियंत्रण, सामाजिक सम्मान और आर्थिक सुरक्षा से जुड़ा हुआ व्यापक संघर्ष था।

मुगल प्रशासन और राजस्व व्यवस्था ने साम्राज्य को मजबूत किया, परंतु इसकी कठोरता ने ग्रामीण समाज, किसानों, जमींदारों और स्थानीय नेतृत्व पर दबाव भी बढ़ाया। मनसबदारी और जागीरदारी व्यवस्था ने राज्य को सैन्य शक्ति प्रदान की, लेकिन जागीर संकट, अधिक राजस्व वसूली और अल्पकालिक नियुक्तियों ने ग्रामीण असंतोष को जन्म दिया। इसी प्रकार धार्मिक नीति ने भी कई बार सामाजिक तनाव को तीव्र किया। अकबर की समन्वयवादी नीति ने सहयोग और स्थिरता को बढ़ावा दिया, जबकि औरंगजेब के समय कुछ धार्मिक निर्णयों और जजिया जैसी नीतियों ने असंतोष को प्रतीकात्मक आधार प्रदान किया। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि मुगलकालीन गैर–मुस्लिम राजनीतिक विद्रोह केवल सत्ता–विरोधी घटनाएँ नहीं थे, बल्कि वे मुगल प्रशासनिक कठोरता, राजस्व दबाव, धार्मिक नीति, सामाजिक असमानता और स्थानीय स्वायत्तता की आकांक्षा के संयुक्त परिणाम थे। इन विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य की कमजोरियों को उजागर किया और भारतीय राजनीति में क्षेत्रीय शक्तियों के उदय की ऐतिहासिक प्रक्रिया को आगे बढ़ाया।